इस इकाई में वैदिक वाङ्मय के अन्तिम भाग वेदाङ्ग एवं स्मृति साहित्य के आधार पर ज्योतिष, गणित, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र एवं पंचम वेद आयुर्वेद का संक्षिप्त ज्ञान क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

5.2 धर्मशास्त्र

वेदों के बाद धर्मशास्त्र ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें धर्म की व्याख्या की गयी है। इन ग्रन्थों को स्मृति नाम से भी जाना जाता है। धर्मशब्द ''धृ'' धातु से बना है जिसका तात्पर्य है धारण करना, आलम्बन देना, पालन करना। प्राचीन काल में धर्म का अर्थ ''निश्चित नियम'' (व्यवस्था का सिद्धान्त) या आचरण नियम से भी माना जाता था। धर्मशास्त्र ग्रन्थों का प्रणयन उन ऋषियों द्वारा हुआ है जो वेदों के मर्मज्ञ थे। धर्म की परिभाषा में समयानुसार परिवर्तन होते रहते हैं। अंत में धर्म मानव के विशेषाधिकारों, कर्तव्यों, बन्धनों का द्योतक, आर्यजाति के सदस्य की आचार विधि का परिचायक एवं वर्णाश्रम का द्योतक हो गया। (प्रो. काणे, धर्म शास्त्र का इतिहास भाग) (पृ.2)

धर्मशास्त्रों का धर्म सम्प्रदाय विशेष व्यवस्था आधुनिक अर्थ में समझा जाने वाला धर्म नहीं था। प्राचीन भारत में चार पुरुषार्थों की अवधारणा विद्यमान थी (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) इसी के माध्यम से लौकिक व पारलौकिक उपलब्धियाँ सम्भव थी। व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है व प्रथम तीन पुरुषार्थ उसकी प्राप्ति के साधन हैं। याज्ञवलक्य: ने (याज्ञवलक्य स्मृति 1/122 व 3/66) सामान्य रूप से धर्म के अन्तर्गत नैतिक नियमों का समावेश किया है। अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों का संयम, दान देना, दया और धैर्य धारण करना ये सभी व्यक्तियों के लिये धर्म के साधन माने गये हैं तथा कहा गया है कि व्यक्ति को धर्म मन और वचन से यत्नपूर्वक धर्म का आचरण करना चाहिए।

धर्म के इस साधारण रूप के अलावा एक विशेष प्रकार के धर्म का प्रचलन प्राचीन काल में था जैसे वर्णधर्म, आश्रम धर्म, राजधर्म, स्मृति धर्म। इसके वे कर्तव्य हैं जो वर्णाश्रम धर्म से सम्बन्धित हैं और जिनका उल्लेख स्मृतियों में हुआ है। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र चारों वर्णों के कर्तव्यों का विधान (निमित्त धर्म आदि)। इसमें वे प्रायश्चित होते थे जो निर्धारित कर्तव्यों का पालन न करने के फलस्वरूप करने पड़ते थे।

स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में धर्म के अन्तर्गत कर्तव्यों की एक लम्बी श्रृंखला थी। धर्मशास्त्रीयों में धर्म का स्वरूप संकीर्ण नहीं हैं, यह समस्त जीवन की आचरण संहिता है। धर्मशास्त्रियों में निम्न विषयों की चर्चा मिलती है- वर्ण आश्रम उनके कर्तव्य, उत्तरदायित्व एवं विशेषाधिकार, संस्कार (गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक) स्नातक के कर्तव्य, वानप्रस्थ आश्रम, सन्यास आश्रम, विवाह, गृहस्थ के कर्तव्य, शौच, पंच महायज्ञ, दान, शुद्धि, अशौच, स्त्री धर्म, स्त्रीपुंसधर्म, प्रायश्चित, कर्मविषाक, शान्ति।

5.2.1 धर्मशास्त्रियों का परिचय

धर्मशास्त्रों के अन्तर्गत धर्मसूत्र व स्मृतियां आती हैं। धर्मसूत्रों में बहुत से ग्रन्थ पाये जाते हैं, जिनमें बौधायन धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र प्रमुख हैं। धर्मसूत्रों का रचनाकाल 6 ई. पू. के बीच माना जाता है। स्मृतियों का विकास श्रुति (वेद) से हुआ है। वैदिक परम्परा के साथ-साथ स्मृतियों में देश व काल की परिवर्तित परिस्थितियों का भी चित्रण है। तात्कालीन हिन्दू समाज में धर्म से सम्बन्धित नवीन प्रावधानों को लेखबद्ध करने की इच्छा से स्मृतियों का विकास हुआ।

स्मृतियों की संख्या बीस से अधिक है लेकिन प्रमुख स्मृतियां निम्न है, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारदस्मृति, विष्णु पाराशर स्मृति, व्यास स्मृति, शंख स्मृति, लिखित स्मृति, दक्ष स्मृति, वशिष्ठ स्मृति। सब स्मृतियों में सर्वाधिक प्रमाणिक और मान्य मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृतियां है। इनमें मनुस्मृति सर्वाधिक प्राचीन है। इसमें बारह अध्याय है जिनमें आचार, व्यवहार, प्रायश्चित पर विचार किया गया है। मनुस्मृति प्रमाणिक है-अन्य सभी स्मृतियों में इसी को आधार माना गया है। मनुस्मृति को भृगु द्वारा संशोधित माना गया है। मेधातिथि गोविन्दराज व कुलूक भह ने इसके ऊपर टीकाऐं लिखी हैं।

5.2.2 मनुस्मृति

मनुस्मृति के बाद याज्ञवलक्य स्मृति को महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसमें भी तीन काण्ड हैं-आचार, व्यवहार, प्रायश्चित। याज्ञवलक्य मनुस्मृति के बहुत से पक्षों पर सहमत है, लेकिन वे कई पक्षों पर असहमत भी है। वियोग, उत्तराधिकार, जुआ आदि बहुत से विषयों पर वे मनु से असहमत हैं। अपर्राक, मिताक्षरा इसके टीकाकार हैं। इनमें मिताक्षरा सबसे अधिक प्रमाणिक है। नारदस्मृति में व्यवहार पर ही चर्चा की गयी है। नारद मनु के अनुयायी ही प्रतीत होते हैं। नारद स्मृति के व्यवहार के 18 नामों में मनुस्मृति से थोड़ी भिन्नता मिलती है, नारद नियोग, स्त्री के पुनर्विवाह, जुआ खेलने की कुछ विशेष परिस्थितियों में स्वीकृति देते हैं।

5.2.3 बृहस्पति स्मृति

बृहस्पति स्मृति को रंगास्वामी आयंगर ने संकलित किया है। बृहस्पति में 7 काण्ड हैं व्यवहार, आचार, संस्कार, श्राद्ध, अशौच, आपदधर्म और प्रायश्चित। इसका अधिकांश भाग गद्य में लिखा गया है, लेकिन कहीं-कहीं पर पद्य भी हैं। बृहस्पति ने मनु का ही अनुगमन किया है, उन्हें मनुस्मृति का वर्तिकाकार कहा गया है। बृहस्पति स्मृति मनुस्मृति की ही पूरक मानी जाती है। मनु की तरह बृहस्पति भी नियोग के विरुद्ध है। उन्होंने व्यवहार के अठारह शीर्षकों को दो भागों में विभाजित किया है-चौदह को दीवानी (धनमूलक) व चार को (फौजदारी) में बृहस्पति ने दिव्य भी नौ प्रकार के बताए हैं। कात्यायन स्मृति के व्यवहार काण्ड को पी. वी. काजे ने संकलित किया है। कात्यायन का विवरण मनु, बृहस्पति नारद व कौटिल्य से काफी समानता रखता है। कात्यायन स्मृति की प्रमुख विशेषता स्त्रीधन की व्याख्या है। नारद, याज्ञवल्क्य, कौटिल्य व धर्मसूत्राकार, बौधायन व गौतम की तरह कात्यायन ने कुछ विशेष परिस्थितियों में नियोग का समर्थन करती है।

5.2.4 धर्मशास्त्र ग्रन्थों का निर्माण काल

धर्मशास्त्र ग्रन्थों का निर्माण कब हुआ यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। यास्क को निरुक्त में उत्तराधिकार के विषय में एक उदाहरण दिया है, जिसे ऋचा न कहा जाकर श्लोक कहा गया है। (निरुक्त 3.45) यदि वास्तव में धर्मसम्बन्धी विषयों के ग्रन्थ यास्क के पूर्व विद्यमान थे तो धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों की तिथि बहुत प्राचीन मानी जायेगी। गौतम, बौधायन तथा आपस्तम्ब के धर्मसूत्र निश्चित रूप से ईसा पूर्व 6 और 3 के बीच के हैं। स्मृति ग्रन्थों के निर्माणकाल को लेकर भी बहुत मतभेद हैं। मनुस्मृति सबसे प्राचीन मानी गयी है। प्रो. काणे ने प्रमुख स्मृतियों का रचनाकाल इस प्रकार माना है-मनुस्मृति 2 ई. पू. से लेकर 1 ई. पू. के मध्य, याज्ञवलक्य स्मृति 1 ई. पू. से 3 के मध्य, नारद स्मृति 1-4 ई. पू. के मध्य बृहस्पति स्मृति 3-5 ई. पृ. के मध्य

5.3 अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र में कुल 15 अधिकरण 15 अध्याय, 18 विषय एवं 6 श्लोक हैं। श्लोक अनुष्टुप जाति में अधिक है। कौटिलीय अर्थशास्त्र ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह ग्रन्थ प्राचीन भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन पर मूल्यवान प्रकाश डालता है। इसमें मानव जीवन के विभिन्न विषयों पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम अधिकरण में राजा द्वारा शास्त्राध्ययन, आन्वीक्षिकी एवं राजनीति का ज्ञान, गुप्तचर संस्था, राजा की सुरक्षा आदि पर विचार है। दूसरे अधिकरण में ग्राम निर्माण, दुर्ग, भूमि, खानों, वनों, आय-व्यय का निरीक्षण आदि का उल्लेख है। तीसरे अधिकरण में न्यायशासक, विधि, विवाह के प्रकार, स्त्रीधन आदि से सम्बन्धित वर्णन है। चौथे अधिकरण में कंटक निष्कासन, राष्ट्रीय विपत्तियों, राजकीय विभागों की रक्षा, विविध प्रकार के दोषों के लिए अर्थदण्ड आदि का वर्णन हैं। पांचवे में राजकर्मचारियों के आचरण, वेतन, योग्यताऐं आदि बताई गयी हैं।

छठे में मण्डल रचना, सप्तांग राज्य की अवधारणा, षड्विध राजनीति आदि का उल्लेख है। 7 वें में नीति के छः गुण बताए जाते है। संधि, विग्रह, यान, आसन-शरण, गहना एवं द्वैधीभाव राजा एवं राजमण्डल आदि का वर्णन हैं। 8 वें अधिकरण में राजा एवं राज्य के कष्ट आदि के बारे में विवरण है। 9 वें अधिकरण में आक्रमणकारी के कार्य, आक्रमण के समय आदि के बारे में बताया गया है। 1 वें अधिकरण में सेना के अभियान का उल्लेख है। 11 वें

अधिकरण में नगरपालिकाओं आदि का उल्लेख है। 12 वें अधिकरण में शक्तिशाली शत्रु के बारे में दूत भेजना, गुप्तचर आदि का उल्लेख हैं। 13 वें अधिकरण में दुर्ग को जीतना, फूट उत्पन्न करना, विजित राज्य में शान्ति उत्पन्न करना आदि का उल्लेख है। 14 वें अधिकरण में गुप्त साधन, शत्रु की हत्या के उपाय, औषधियां, मन्त्र प्रयोग आदि का वर्णन है। 15 वें अधिकरण में इस कृति का विभाजन एवं उसकी युक्तियां उल्लखित हैं। अर्थशास्त्र की विषयवस्तु पर दृष्टिपात करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें विभिन्न विषयों का समावेश है। प्राचीन भारतीय समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक पक्षों पर कौटिलीय अर्थशास्त्र से महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

5.3.1 अर्थशास्त्र ऐतिहासिक स्रोत के रूप में

कौटिल्य ने चारों वेदों, अथर्ववेद के मन्त्र प्रयोग, छः वेदांङ्गों, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र की चर्चा की है। इसमें सांख्य, योग एवं लोकायत की शाखाओं की ओर भी संकेत आया है। अर्थशास्त्र में ज्योतिष व धातुशास्त्र का भी उल्लेख हुआ है। कौटिल्य के समय संस्कृत ही जन भाषा थी। अर्थशास्त्र में कई भौगोलिक क्षेत्रों का भी उल्लेख हुआ है। इसमें चीन के रेशम एवं नेपाल के कम्बल की चर्चा हुई है। अर्थशास्त्र (11.1) में वृत्तियों के ''संघ'' कम्बोज एवं सुराष्ट्र के आयुध जीवी (युद्ध जीवी) एवं वार्ताजीवी दकृषि, व्यापार, जीवी) श्रत्रियों की श्रेणियों तथा लिच्छिविद, वृजिक, मलल्क, भद्रक, कुकुर तथा कुरूपन्चालों का वर्णन आया है। कौटिल्य (अर्थशास्त्र 3.13) म्लेच्छ जाति का भी उल्लेख करते हैं। जिसमें संतानों की बिक्री हो सकती है और उन्हें बन्धक रखा जा सकता है।

बौद्धों के विषय में कोई विशिष्ट विवरण नहीं मिलता है। एक जगह यह उल्लेख अवश्य मिलता है कि उस व्यक्ति को एक सौ पण देना पड़ेगा जो अपने घर में देवताओं या पितरों के सम्मान के समय बौद्ध (कौ. 3.2) इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस समय बौद्धों की सम्माननीय स्थिति नहीं थी। कौटिल्य को जड़ी बूटियों का आश्चर्यजनक ज्ञान था। कौटिलीय अर्थशास्त्र में एक महत्त्वपूर्ण बात है दुर्ग में मन्दिरों की स्थापना होना। विभिन्न विवरणों से अर्थशास्त्र की प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। कौटिल्य ने प्राचीन का आश्चर्यजनक ज्ञान था। कौटिलीय अर्थशास्त्र में एक एक महत्त्वपूर्ण बात है दुर्ग में मन्दिरों की स्थापना होना विभिन्न विवरणों से अर्थशास्त्र की प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। कौटिल्य ने प्राचीन कालीन समाज में प्रचलित वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन किया है, उसके अनुसार वर्णाश्रम से मर्यादित समाज सुखकर और मुक्तिदायी है।

प्राचीन शासन व्यवस्था का सम्पूर्ण चित्र कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है। मंत्रीपरिषद् के सहयोग से ही राजा शासन कार्य चलाता था। कौटिल्य मंत्र की गोपनीयता पर भी जोर देते हैं। उनके अनुसार यदि कार्यान्वित होने से पहले ही किसी गुप्त योजना का फूट जाना राजा और मंत्रिपरिषद दोनों के लिए अनिष्ट का कारण हो सकता है। अर्थशास्त्र में एक ऐसे विराट साम्राज्य की स्थापना का प्रयास किया गया है, जिसकी शासन सत्ता निरकुंश हो फिर भी उसमें लोककल्याण की भावना विद्यमान रहे। कौटिल्य ने राजा का पहला कर्तव्य प्रजा को प्रसन्न करना माना है। इसके अलावा राजा के प्रमुख कर्त्तव्य हैं– यज्ञ, प्रजापालन, न्याय, दान, शत्रु मित्र से उचित व्यवहार, विभिन्न विषयों के प्रकांड विद्धानों को उनके उपयुक्त स्थानों पर नियुक्त करना। कौटिल्य अर्थशास्त्र में राजदूत को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। परराष्ट्र सम्बन्धी कार्यों में वह राजा का प्रतिनिधित्व करता है। गुप्तचरों को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। कौटिलीय अर्थशास्त्र में न्याय व्यवस्था की विस्तार से विवेचना हुई है। न्याय व्यवस्था को दो भागों में बाँटा गया है–

(1) व्यवहार

(2) कण्टकशोधन।

नागरिकों के पारस्परिक कलहों के मूल कारणों का पता लगाकर उनकी विवेचना करना और दोषी को दण्ड प्रदान करना व्यवहार के अन्तर्गत आता है। कण्टकशोधन का सम्बन्ध राजकर्मचारियों से है। साथ ही इसमें पूँजीपति और दुर्जन लोगों का भी समावेश है। राजकर्मचारियों, व्यवसायियों, दुर्जनों से प्रजा की रक्षा करने

के लिए ही कण्टशोधन स्थापित किये गये थे। समाज में होने वाले शोषणों का कौटिल्य ने बहुत बारीकी से अध्ययन किया है।

कौटिल्य की दण्ड व्यवस्था के तीन अंश हैं- अर्थदण्ड, शरीरदण्ड, और कारागार दण्ड। अपराध के अनुसार दण्ड दिया जाता था। अपराधियों के सुधार और बंदीग्रहों की सुव्यवस्था पर भी कौटिल्य ने ध्यान दिया है। कौटिल्य की दण्ड व्यवस्था बहुत वैज्ञानिक है। कौटिल्य ने चार विद्याओं (अन्वीक्षकी, गमी, वार्ता, दण्डनीति) में प्रमुखता प्रदान की है क्योंकि इसके द्वारा ही शेष तीनों विद्याओं का सुविधापूर्वक संचालन किया जा सकता है (अर्थशास्त्र 12)। वास्तव में कौटिल्य की दण्ड-व्यवस्था लोकत्याग के सिद्धान्त पर आधारित है।

अर्थशास्त्र में राजा कानूनों का निर्माण तो कर सकता है, लेकिन वह ऐसा कानून नहीं बना सकता है। जो धर्म के विरुद्ध हो। न्यायिक कार्यों का सम्पादन सभा करती थी। सर्वप्रधान न्यायाधीश होता था। धर्मशास्त्र विभाग का मन्त्री होता था जो धर्मधिकारी कहलाता था। न्याय का अन्तिम निर्णयकर्त्ता राजा ही होता था। प्रधान न्यायाधीश का कर्तव्य था कि वह प्रत्येक निर्णित मुकदमें का पुनर्निरीक्षण करें। कौटिल्य की न्याय व्यवस्था बड़ी प्रभावशाली थी। यह कहते हैं कि ''जब राजा किसी निरपराध व्यक्ति को दण्ड देता है तो उस किये गये अर्थदण्ड का तीस गुना द्रव्य राजा को वरुण देवता के निमित्त जल में फेंकना पड़ता है, जिसे बाद में ब्राह्मणों में बाँट दिया जाता है।'' दण्ड के समक्ष राजा को भी रियासत नहीं दी जाती थी। कौटिल्य ने स्वयं सजा के लिए भी दण्ड व्यवस्था स्थापित की है। एक सामाजिक व्यक्ति का परिवार के प्रति, माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र, शासक, शासित, नौकर, श्रमिक, व्यापारी, कलाकार, घोबी, ग्वाला, ग्राहक के प्रति क्या कर्त्तव्य है। उसकी भी व्याख्या कौटिल्य ने की है।

कौटिल्य की सामाजिक व प्रशासनिक व्यवस्था का आधार आर्थिक व्यवस्था है। कौटिल्य की अर्थनीति के तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं- प्रथम वर्ग के उद्योगों का संचालन राज्य द्वारा किया गया है। इनमें सोना, चाँदी, शिलाजीत, ताँबा, शीशा, टिन, लोहा आदि उद्योग आ सकते हैं। दूसरे प्रकार के उद्योगों पर जनता का ही स्वामित्व होता है। इनमें खेती, सूत, शिल्प, गोपालन, अश्व पालन, इस्तिपालन, सुरा, मांस, वेश्यालय आदि को रखा जा सकता है। इन्हें नागरिकों की निजी सम्पत्ति के रूप में माना गया है। कौटिल्य की अर्थनीति का तीसरा सिद्धान्त समाज में ऐसी सुव्यवस्था बनाये रखने से सम्बन्ध है जिसके अनुसार राज्य के समस्त उत्पादन, वितरण और उपभोग पर राज्य का नियंत्रण हो। अर्थ-विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी समाहार्ता कहा गया है। और भी वर्णित उद्योगों के अलावा अर्थदण्ड, नाप तौल का कर, नागरिकों द्वारा प्राप्त राज्यांश, कृषिकर, उपज अंश, बलिकर, धार्मिक कर, वणिक कर आदि थे। इनके अलावा व्यावसायिक वस्तुओं के आयात-निर्यात से आमदनी होती थी।

5.4 ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष का इतिहास भी अत्यन्त प्राचीन है। वेदों को भलीभाँति समझने के लिये जिन छः वेदांगों की रचना की गयी थी उनमें अन्तिम ज्योतिष हैं। यह यज्ञ-याग के उचित समय का निर्देश करता है। इसके लिये समय-शुद्धि की महती आवश्यकता होती थी। यज्ञ के कुछ विधानों का सम्बन्ध संवत्सर तथा ऋतु से भी होता था। नक्षत्र, तिथि, पक्ष, माह का भी निर्धारण यज्ञ के लिये आवश्यक था। इन सबका ज्ञान ज्योतिष के ज्ञान के बिना सम्भव नहीं था। यह बताया गया है कि ज्योतिष को भलीभाँति जानने वाला व्यक्ति ही यज्ञ का यथार्थ ज्ञाता होता है। इस प्रकार प्राचीन ज्योतिर्विधा का उद्देश्य समय-समय पर होने वाले यज्ञों का मुहूर्त एवं काल निर्धारित करना था। उस काल की आवश्यकताओं के लिये यह पर्याप्त था।

गुप्तकाल के पूर्व भारतीय ज्योतिष के विषय में हमारी जानकारी अल्प है। सम्भवतः प्राचीन काल के भारतीय ज्योतिष ज्ञान पर मेसोपोटामिया का प्रभाव था। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से ज्योतिष पर यूनानी प्रभाव के विषय में स्पष्ट सूचना मिलने लगती है। बृहत्संहिता में यवनों को ज्योतिष का जन्मदाता होने के कारण ऋषियों के समान

पूज्य बताया गया है। भारतीय ग्रन्थों में ज्योतिष के पाँच सिद्धान्तों पैतामह, वशिष्ठ, सूर्य, पौलिश तथा रोमक उल्लिखित हैं। इनमें अन्तिम दो की उत्पत्ति यूनान से मानी गयी है। रोमक सिद्धान्त के सम्बन्ध में वाराहमिहिर ने जिन नक्षत्रों का उल्लेख किया है वे यूनानी लगते हैं। पौलिश सिद्धान्त सिकन्दरिया के प्राचीन ज्योतिषी पाल के सिद्धान्तों पर आधारित प्रतीत होता है। ज्योतिष के माध्यम से यूनानी भाषा के अनेक शब्द संस्कृत तथा बाद की भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गये।

गुप्तकाल में संस्कृति के अन्य पक्षों के साथ-साथ ज्योतिष एवं खगोल विद्या का भी सर्वांगीण विकास हुआ। इस समय तक खगोल विद्या का अध्ययन इतना अधिक लोकप्रिय हो गया था कि कालिदास जैसे कवियों ने भी इसका अनेकशः उल्लेख किया। गुप्तकाल के इतिहास-प्रसिद्ध ज्योतिषी आर्यभट्ट प्रथम एवं वाराहमिहिर हैं। आर्यभट्ट प्रसिद्ध खगोलविद् होने के साथ-साथ महान गणितज्ञ भी थे।

आर्यभट्ट का जन्म पाटलिपुत्र में 476 ई. के लगभग हुआ। 23 वर्ष आयु (499 ई.) में उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आर्यभट्टीयम्' की रचना की थी। ज्योतिष के प्रगति की निश्चित एवं प्रत्यक्ष जानकारी हमें इसी ग्रन्थ से मिलती है। आर्यभट्ट प्रथम ज्योतिष पर लेखनी उठाने वाले प्राचीनतम ज्ञात ऐतिहासिक व्यक्ति थे। नि:संदेह वे भारत द्वारा उत्पन्न महानतम वैज्ञानिकों में से हैं। उन्हें सिकन्दरिया के यूनानी ज्योतिषियों के प्रमुख सिद्धान्तों और निष्कर्षों का अच्छा ज्ञान था, साथ ही साथ अपने भारतीय पूर्व सूरियों के ग्रन्थों तथा पद्धतियों का भी उन्होंने ध्यानपूर्वक अध्ययन किया था। तथापि आर्यभट्ट ने किसी का भी अन्धानुकरण नहीं किया तथा सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों से रहित होकर अपने निष्कर्षों का प्रतिपादन किया। वे लिखते हैं कि "मैने खगोलीय सिद्धान्तों के सच्चे झूठे समुद्र में गहरी डुबकी लगायी थी तथा अपनी बद्धि रूपी नौका के माध्यम से सच्चे ज्ञान की मूल्यवान निमज्जित मणि का उद्वार किया।" स्पष्टतः उनके निष्कर्ष स्वयं के निरीक्षणों एवं अन्वेषणों पर आधारित थे। सिकन्दरिया के खगोल सम्प्रदाय के निष्कर्षों का भी आर्यभट्ट ने अन्धानुकरण नहीं किया अपितु अपने अन्वेषणों एवं निरीक्षणों द्वारा उनमें परिष्कार भी किया, उनके मन में भारतीय धर्मशास्त्रों-श्रृति, स्मृति, पुराण आदि के प्रति सम्मान था लेकिन इनके द्वारा प्रतिपादित इन मान्यता को मानने से उन्होंने इन्कार कर दिया कि सूर्य एवं चन्द्र ग्रहणों का कारण राहु और केतु जैसे असुर है। उन्होंने यह मत दिया कि चन्द्र या सूर्य ग्रहण चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ने से अथवा सूर्य और पृथ्वी के बीच चन्द्रमा के आ जाने से लगते हैं।

आर्यभट्ट पहले भारतीय खगोलशास्त्री थे जिन्होंने यह खोज की कि पृथ्वी गोल है तथा अपने अक्ष (Axis) के चारों ओर परिभ्रमण करती है, सूर्य स्थित है तथा पृथ्वी गतिशील है, चन्द्रमा तथा दूसरे ग्रह सूर्य के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं, उनमें स्वयं कोई प्रकाश नहीं होता। उन्होंने ही जीवा के फलनों (Sine Funetions) का पता लगाया तथा खगोल के लिये उनका उपयोग किया, दो क्रमागत दिनों की अवधि में वृद्धि या कमी को नापने के लिये सटीक सूत्र प्रस्तुत किया, ग्रहीय गतियों के विवरण की व्याख्या के लिये अधिचक्रिय सिद्धान्त (Epicylic Theory) की स्थापना की, चन्द्र की कक्षा में पृथ्वी की छाया के कोणीय व्यास को शुद्ध रूप से प्रकट किया। उन्होंने यह निश्चित करने के भी नियम बनाये कि किसी ग्रहण में चन्द्रमा का कौन सा भाग आच्छादित होता है तथा ग्रहण की अवधि में अर्धांश तथा पूर्व ग्रास का ज्ञान किस प्रकार किया जा सकता है। आर्यभट्ट ने वर्ष लम्बाई 365.258685 दिनों की बताई। यह तालमी द्वारा मान्य लम्बाई 365.2631579 दिनों की यथार्थ अवधि के सन्निकट है। सूर्य की पराकाष्ठा के देशान्तर (Longitude of Sun's Apogee) तथा चन्द्र के पातों (Moon's Nodes) के नक्षत्र काल (Sidereal Period) विषयक उनके विचार भी सही है। ये सभी खगोल क्षेत्र में उन्नत ज्ञान के परिचालक हैं। किन्तु यह खेद का विषय है कि हम उन पद्धतियों तथा परीक्षणों के बारे में कुछ भी नहीं जानते, जिन्होंने इन उपलब्धियों को सुगम बनाया। दूरवीक्षय यन्त्र (Teleca) के ज्ञान के अभाव में खगोल क्षेत्र में इतनी उच्चकोटि की उपलब्धि सचमुच आश्चर्य की बात कही जायेगी। पाश्चात्य जगत कोपरनिकस (1473-1543) को ब्रह्माण्ड के 'सूर्य केन्द्रिक सिद्धान्त' का अन्वेषक मानता है, जबकि इसके शताब्दियों पूर्व भारतीय खगोलशास्त्री आर्यभट्ट ने इस सिद्धान्त का पता लगाकर ब्रह्माण्डीय गतिविधियों का केन्द्र सूर्य को घोषित कर दिया था। आर्यभट्ट ने ज्योतिष को गणित से अलग शास्त्र के रूप में प्रतिस्थापित कर दिया। उनके विचार सबसे अधिक वैज्ञानिक थे। आर्यभट्ट के पश्चात् उनके शिष्यों

निशंक पाण्डुरंगस्वामी तथा लाटदेव द्वारा उनके सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार किया गया। इनमें लाटदेव सबसे अधिक प्रसिद्ध है जिसने पौलिस तथा रोमक सिद्धान्तों की व्याख्या प्रस्तुत की। उन्हें 'सर्व सिद्धान्त गुरु' भी कहा जाता है।

आर्यभट्ट के पश्चात् भारतीय ज्योतिषियों में वाराहमिहिर (छठी शताब्दी) का नाम उल्लेखनीय है। यदि आर्यभट्ट गणित ज्योतिष के प्रवर्तक थे तो वाराहमिहिर फलित ज्योतिष के प्रणेता के रूप में स्मरणीय है। वे उज्जयिनी के निवासी तथा आदित्यदास के पुत्र थे। उनका गणित ज्योतिष सम्बन्धी प्रसिद्ध ग्रन्थ (पंचसिद्धान्तिका) है जिसमें ईसा की तीसरी–चौथी सदी में प्रचलित ज्योतिष के पाँचों सिद्धान्तों–पैतामह, वाशिष्ठ, रामक, पौलिश तथा सूर्य का उल्लेख मिलता है। पंचसिद्धान्तिका के प्रथम खण्ड में खगोल विज्ञान पर विशद प्रकाश डाला गया है। ब्रह्माण्डीय पिण्डों का अस्तित्व, उनका परस्पर सम्बन्ध तथा प्रभाव सम्बन्धी वाराहमिहिर का ज्ञान आज भी हमें चमत्कृत करता है। इनमें माग सूर्य सिद्धान्त सम्बन्धी पाण्डुलिपि तथा टीकायें ही इस समय प्राप्त हैं। वाराहमिरि ने विज्ञान की उन्नति में कोई मौलिक योगदान तो नहीं दिया किन्तु 'पंचसिद्धान्तिका' को लिखकर उन्होंने ज्योतिष का बड़ा उपकार किया। यदि यह ग्रन्थ न मिलता तो ज्योतिष शास्त्र का इतिहास ही अपूर्ण रहता। पंचसिद्धान्तिका के अतिरिक्त वाराहमिहिर ने कुछ अन्य ग्रन्थों–बृहज्जातक, बृहत्संहिता तथा लघुजातक की भी रचना की थी जो फलित ज्योतिष की रचनायें है। बृहत्जातक एवं बृहत्संहिता में भौतिक, भूगोल, नक्षत्र विद्या, वनस्पति विज्ञान, प्राणि शास्त्र आदि का विश्लेषण किया गया है। पौधों में होने वाले विभिन्न रोगों तथा उनके उपचार के क्षेत्र में भी उन्होंने बड़ा काम किया। विभिन्न औषधि के रूप में पौधों के गुणकारी उपयोग सम्बन्धी उनके शोध आयुर्वेद की अमूल्य निधि है। बृहत्संहिता, ज्योतिष, भौतिक भूगोल, वनस्पति तथा प्राकृतिक इतिहास का विश्वकोश ही है।

आर्यभट्ट तथा वाराहमिहिर के पश्चात् भारतीय ज्योतिषियों में ब्रह्मगुप्त का नाम प्रसिद्ध है। इनके प्रसिद्ध 'ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त' के कुल चौबीस अध्यायों में से बाइस ज्योतिष से सम्बन्धित हैं। 'खण्ड खाद्यक' इनका दूसरा ग्रन्थ है। ब्रह्मगुप्त को इस बात का श्रेय जाता है कि अरबों में ज्योतिष का प्रचार सर्वप्रथम उन्होंने ही किया। उनके ग्रन्थों का अल्परूपी अनुवाद किया गया। उनके सिद्धान्तों का विदेशों में बड़ा सम्मान था। साचों (Sachau) के अनुसार 'प्राच्य सुधार के इतिहास में ब्रह्मगुप्त का स्थान अत्यन्त ऊँचा है। टालमी के पूर्व उन्होंने ही अरब के निवासियों को ज्योतिष का ज्ञान सिखाया था।'

भारतीय खगोलशास्त्री अच्छे गणितज्ञ भी थे तथा इस विषय में उनका ज्ञान यूनानियों की अपेक्षा अधिक था। गणित के माध्यम से ही भारतीय खगोलविद्या यूरोप पहुँचाई गयी। सातवीं शताब्दी के सी रियार्ड ज्योतिषविद् सिविस सिवोखत (Severous Seboknt) को इसकी महानता का ज्ञान था तथा बगदाद के खलीफा ने अपने यहाँ भारतीय खगोलविदों को नियुक्त कर रखा था मध्यकालीन यूरोपीय खगोलशास्त्र में प्रचलित शब्द (आक्स) दग्रहपथ का सर्वोचित स्थान) निश्चित रूप से संस्कृत के 'उच्च' से लिया गया है।

5.5 गणित

वैदिक काल में हम गणित शास्त्र के विकसित होने का प्रमाण प्राप्त करते हैं। इस दृष्टि से सूत्र काल (लगभग ई. पू. 6–4) महत्त्वपूर्ण है। इसमें कल्पसूत्र के अन्तर्गत आने वाला शुल्व–सूत्र विशेष महत्त्व का है। ''शुल्व'' का शाब्दिक अर्थ नापना होता है। यज्ञों में विदियाँ और मण्डप बनाये जाते थे। वेदी की आकृति विभिन्न थी–वर्ग, समचतुर्भुज, समबाहु, समलंब, आयत, समकोण, त्रिभुज आदि। इन्हें तैयार करने के लिये नाप–जोख की आवश्यकता पड़ती थी। इस कार्य के लिये जो विधि–विधान बनाये गये उन्हें शुल्ब सूत्रों में लिखा गया। वस्तुतः ये सूत्र ही भारत के गणितशास्त्र में प्राचीनतम ग्रन्थ कहे जा सकते हैं जिसमें हम ज्यामिति अथवा रेखागणित सम्बन्धी ज्ञान को अत्यन्त विकसित पाते हैं। गौतम, बौधायन, आपस्तम्भ, कात्यायन, मैत्रायण, वाराह वशिष्ठ आदि प्राचीन सूत्रकार थे। रेखागणित सम्बन्धी सिद्धान्तों के प्रतिपादन तथा विकास का प्रधान श्रेय बौधायन को ही दिया जा सकता है। उन्होंने ही सबसे पहले 2 जैसी संख्याओं को अपरिमेय मानते हुए उनका अधिकतम शुद्ध मूल्य ज्ञात किया था। यूनानी दार्शनिक पाइथोगोरस (54 ई. पू.) के नाम से प्रचलित प्रमेय जिसके अनुसार, समकोण त्रिभुज के कर्ण का वर्ग शेष दो भुजाओं पर बने वर्गों के योग के बाराबर होता है का ज्ञान बौद्धायन को शताब्दियों पूर्व ही था और अब अधिकांश

विद्वान इसे 'शुल्ब प्रमेय' ही कहना पसन्द करते हैं। बौद्धायन ने वृत्त को वर्ग तथा वर्ग को वृत्त में बदलने का नियम प्रस्तुत किया तथा त्रिभुज, आयत, समलम्ब चतुर्भुज जैसी रेखागणित की आकृतियों से वे पूर्ण परिचित थे। यजुर्वेद में अग्नि की स्तुति के सम्बन्ध में एक (1), दस (1), शत (1), सहस्त्र (1), अयुत (1), नियुत (1) प्रयुत (1), अर्बुद (1), न्यर्बुद (1), समुद्र (1), मध्य (1), अन्नत (1), तथा परार्ध (1) जैसी संख्याओं का उल्लेख मिलता है। विष्णु पुराण में वर्णित है कि एक स्थान से दूसरे स्थान का मान दस गुना होता है। तथा अठारहवें स्थान की संख्या को परार्ध कहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि एक से दस तथा दस पर आधारित अन्य संख्याओं के सम्बन्ध में दशमिक पद्धति का प्रयोग सर्वप्रथम बक्षाली पाण्डुलिपि (तीसरी चौथी शताब्दी ई.) में ही प्राप्त होता है। बक्षाली, पाकिस्तान के पेशावर के समीप एक ग्राम है। यही से 1881 ई. में एक किसान को खुदाई करते समय खण्डित अवस्था में यह पाण्डुलिपि प्राप्त हुई थी। समकालीन गणित की स्थिति पर प्रकाश डालने वाला यह एकमात्र ग्रन्थ है। इसमें न केवल भाग, वर्गमूल, अंकगणितीय एवं ज्यामितीय श्रेणियों जैसे प्रारम्भिक विषयों की व्याख्या हैं, अपितु यह कुछ विकसित विषयों जैसे सम्मिक्ष श्रेणियों के योग, समरेखीय समीकरणों तथा प्रारम्भिक द्विघात समीकरणों जैसे विकसित विषयों पर भी प्रकाश डालता है।

सूत्रकाल के बाद ज्यामितीय सिद्धान्तों का विकास गुप्तकाल के गणितज्ञ आर्यभट्ट द्वारा किया गया जिनकी सुप्रसिद्ध रचना 'आर्यभट्टीयम' है। इसमें अंकगणित, ज्यामिति, बीजगणित तथा त्रिकोणमिति के सिद्धान्त दिये गये हैं। यह वृत्तों, त्रिभुजों, चतुर्भुजों और ठोसों के कुछ महत्त्वपूर्ण गुणधर्मों का संकेत भी करता है। वृत्त के क्षेत्रफल के विषय में उनका कहना है कि यह परिधि तथा व्यास के आधे का गुणनफल (½ परिधि ½ व्यास) होता है। त्रिभुज के क्षेत्रफल के विषय में उनका कहना है कि यह आधार तथा समान कोटी के गुणनफल का आधा है। उन्होंने पाई का आसन्न मान $^{11}/_{7}$ अर्थात् 3.1416 बताया है जो इस समय भी शुद्धतम है।

आर्यभट्ट ने अंकसंख्याओं का उल्लेख करते हुए उसमें गणना की दशमिक पद्धति (Decimal System) का प्रयोग किया है, यह प्रथम नौ संख्याओं के स्थानीय मान (Place-Value) तथा शून्य के प्रयोग पर आधारित था, वस्तुतः शून्य तथा दशमिक पद्धति की खोज जो अब समस्त विश्व में स्वीकृत है, भारतीयों की गणित क्षेत्र में महत्तम उपलब्धि है। बहुत समय तक यह माना जाता रहा कि संख्याओं के दशमलव सिद्धान्त का आविष्कार अरबवासियों ने किया था, किन्तु तथ्य यह नहीं है। अरबवासी स्वयं गणित को 'हिन्दसा' अथवा 'हिन्दिस्त' (भारतीय विद्या) कहते थे। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि दशमलव अंकन प्रणाली तथा अन्य गणितशास्त्र मुस्लिम जगत ने या तो पश्चिमी भारत के समुद्री व्यापारियों अथवा सिन्ध विजेता अरबों (712 ई.) के माध्यम से सीखा था। इस सम्बन्ध में पश्चिमी संसार भारत का चिरऋणी है। वह अज्ञात व्यक्ति जो इस नवीन सिद्धान्त का जन्मदाता था, संसार के मतानुसार महात्मा बुद्ध के पश्चात् हुआ था, वह भारत माता का सबसे महत्त्वपूर्ण पुत्र था। उसकी यह महान सफलता, यद्यपि सरलता के साथ सर्वमान्य हो गयी, प्रथम श्रेणी के विश्लेषणात्मक मस्तिष्क की उपज थी और जितना सम्मान उसे आज तक प्राप्त हुआ है उससे कहीं अधिक का वह अधिकारी था। इब्नवशिया (9 वीं शदी), अलूमसूदी (दशवीं शदी) तथा अल्बरूनी (12 वीं शदी) जैसे अरब लेखक इस पद्धति के आविष्कार का श्रेय हिन्दुओं को ही देते हैं। आर्यभट्ट के पश्चात् ब्रह्मगुप्त (लगभग सातवीं सदी) का नाम आता है। वे भिनमल निवासी विष्णु के पुत्र थे। उनकी प्रसिद्ध कृति 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' 628 ई. में लिखी गयी। इसमें वृत्तीय चतुर्भुजों, वर्गो, आयतों, आदि की परिभाषा तथा व्याख्या के लिये अनेक सूत्र दिये गये है। वृत्तीय चतुर्भुजों के क्षेत्रफल को 21 वें श्लोक में 'टालेमी प्रमेय' को 28 वें श्लोक में, सूची स्तम्भ (Pyramid) और छिन्नक (Frustum) के आयतन को 45 वें एवं 46 वें श्लोक में उन्होंने वर्णित किया है। ब्रह्मगुप्त के पश्चात् महावीर दनवीं सदी) तथा भास्कर अथवा भास्कराचार्य (12 वीं सदी) जैसे प्रसिद्ध गणितज्ञों का नाम आता है। इन्होंने जो अनुसंधान किये उनके विषय में पश्चिमी जगत पुनर्जागरण काल अथवा उसके बाद तक नहीं जानता था। महावीर ने अत्यन्त सुबोध शैली में विविधि प्रकार के वृत्तों का क्षेत्रफल निकालने की विधि प्रस्तुत की। धनात्मक तथा ऋणात्मक परिणामों से वे परिचित थे, वर्गमूल एवं धनमूल निकालने की ठोस प्रणाली का प्रवर्तन किया तथा वर्ग समीकरण एवं अन्य प्रकार के निश्चित समीकरणों का हल निकालने में वे निपुण थे। गणितज्ञ भास्कर खानदेश (महाराष्ट्र) के निवासी थे, जिनका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ ''सिद्धान्त शिरोमणि'' है। इसके चार भाग हैं–लीलावती, बीजगणित, ग्रहगणित तथा गोला। अन्तिम में मुख्यतः

खगोल का वर्णन है। कुछ विद्वान लीलावती तथा बीजगणित को स्वतन्त्र ग्रन्थ मानते हैं। भास्कराचार्य ने 'लीलावती ' के 'क्षेत्र व्यवहार' नामक अध्याय में निम्न प्रकरणों पर लिखा है-समकोण त्रिभुजों पर प्रश्न, त्रिभुजों और चतुर्भुजों के क्षेत्रफल, वृत्तों के क्षेत्रफल और पाई का मान, गोलों के तल और आयतन। भास्कर ने 'शुल्ब प्रमेय' (पाइथागोरस प्रमेय) की उत्पत्ति दी है। लीलावती अंकगणित और महत्वमानस दक्षेत्रफल, घनफल) का स्वतन्त्र ग्रन्थ है जिसमें पूर्णांक और भिन्न गैराशिक (Rule of Three) ब्याज, व्यापार गणित, मिश्रण, श्रेणियाँ (Series), क्रमचय (Permutation), नापिकी (Mensuration) व थोड़ी बीजगणित भी है। लीलावती को पाटी गणित भी कहते हैं। चूंकि प्राचीनकाल में गणना पाटी पर धूल बिछाकर उंगली या लकड़ी से की जाती थी। यद्यपि अनिर्णीत समीकरणों (Indoterminete Equestions) का अध्ययन आर्यभट्ट प्रथम के समय से ही आरम्भ हो गया था, लेकिन भास्कर ने 213 पद्य लिखे हैं। वर्णित विषय हैं-धनर्ण (धनात्मक) संख्याओं का योग, करणी (Surds) संख्याओं का योग, कुदतक (भाजक और भाज्य) की प्रक्रिया, वर्ग प्रकृति, एक-वर्ग समीकरण, अनेक-वर्ग समीकरण आदि। भास्कर ने अनिर्णीत वर्ग समीकरण के हल की जो विधि दी है उसे 'चक्रवाल विधि' (Cyclie Method) की संज्ञा दी गई और यह खोज जो भास्कर ने 12 वीं सदी में की, उसे 16 वीं सदी में पाश्चात्य गणितज्ञों ने खोजा। सिद्धान्त शिरोमणि में सबसे महत्त्वपूर्ण 'निरन्तर गति का विचार' है। यह अरबो द्वारा बारहवीं शताब्दी में यूरोप में फैलाया गया। इसी से कालान्तर में शक्ति तकनीक का विकास हुआ। न्यूटन से शताब्दियों पूर्व भास्कर ने पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का पता लगा लिया था। भास्कर ने बताया कि पृथ्वी का कोई आधार नहीं है और यह केवल अपनी शक्ति से स्थिर है। गुरुत्वाकर्षण को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं-'पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है जिसके द्वारा बलपूर्वक वह सभी वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है। वह जिसे खींचती है वह वस्तु भूमि पर गिरती हुई प्रतीत होती है। वे शून्य तथा अनन्त का निहितार्थ भलीभाँति समझते थे। गणित द्वारा उन्होंने यह सिद्ध किया कि शून्य वस्तुतः अनन्त है जो कभी भी विभाजित नहीं होता। इसे किसी राशि में जोड़ने अथवा इसमें कोई राशि जोड़ने या फिर किसी राशि में से घटाने से राशि चिन्ह में कोई परिवर्तन नहीं होता। शून्य को किसी राशि से गुणा करने पर गुणनफल शून्य रहेगा किन्तु राशि को शून्य से भाग देने से फल 'खहर' अथवा 'खछेद' होता है। यही 'कहर' आज का अनंत (`) है। इस प्रकार शून्य का कितना भी विभाजन किया जाय वह अनन्त ही रहेगा। भास्कर ने इसे इस समीकरणों द्वारा स्पष्ट किया`1 × =`1 भारत में इस अननन्तता की अनुभूति ब्रह्म अथवा आत्मा के सम्बन्ध में वेदान्तियों द्वारा शताब्दियों पूर्व की जा चुकी थी जहाँ बताया गया कि 'पूर्ण से पूर्ण निकालने पर पूर्ण ही शेष रहता है।' इस प्रकार की स्पष्ट अवधारणा क्लासिकल गणितज्ञों की कमी नहीं रही। वस्तुतः शून्य तथा अनन्त ही आधुनिक गणित के आधार हैं। इस प्रकार नवीन अंकन पद्धति, शून्य तथा दाशमिक पद्धति का आविष्कार गणित क्षेत्र में प्राचीन भारतीयों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। अपनी जिन महत्त्वपूर्ण खोजों तथा आविष्कारों के ऊपर यूरोप के लोग इतना गर्व करते हैं, उनमें से अधिकांश आविष्कार विकसित गणितीय पद्धति के बिना सम्भव नहीं थे और यदि उन्होंने रोम की भारी भरकम अंक पद्धति को अपनाया होता तो वे और भी असम्भव होते। भास्कर के पश्चात् भारत में गणित शास्त्र का कोई मौलिक लेखक नहीं हुआ। मुगलकाल में शेख फैजी (1587 ई.) ने लीलावती का फारसी अनुवाद प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् उनकी कृतियों का अंग्रेजी अनुवाद भी हुआ।

5.6 आयुर्वेद विज्ञान

भारत में इनका विकास भी प्राचीन काल में ही हो चुका था। इस सम्बन्ध में वेदों में भी विवरण प्राप्त होता है। ऋग्वेद में अश्विनीकुमार से टूटे पैर को जोड़ देने की प्रार्थना की गई है। वहां पर शरीर के भग्न अंशों को कृत्रिम साधनों से ठीक करने का भी उल्लेख है। अथर्ववेद में विभिन्न रोगों तथा उनके उत्पादक कीटाणुओं का वर्णन है। चरकसंहिता के विमान स्थान में इन रोग कीटाणुओं के बारे में विस्तार से लिखा है। शतपथ ब्राह्मण में मनुष्य के शरीर की सब हड्डियों की पूरी संख्या दी है। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद बताना ही उसके महत्त्व और विकास का द्योतक है। आयुर्वेद के 8 भेद इस प्रकार थे-(1) शल्य (चीरफाड़ की क्रिया) (2) शालाक्य (आँख, कान, नाक आदि की बीमारियाँ), (3) कार्यचिकित्सा दरुग्ण शरीर की औषधि आदि से उपचार), (4) भूतविद्या दभूत, प्रेत आदि के प्रभाव को दूर करने की विधि),(5) कौमारभृत्य दबालकों के स्वास्थ्य व माँ धाय आदि के रोगों से सम्बन्धित), (6) अगद ददवा देने की विधि तथा क्रिया), (7) रसायन (तत्काल शक्ति वर्धक दवा या टॉनिक) और (8) वाजीकरण (मानव जाति की वृद्धि के लिये प्रयोग)।

जीवक नामक बौद्ध भिक्षुक काफी प्रसिद्ध था, जिसने भगन्दर, शिरोरोग, कामला आदि विषय रोगों का उपचार करने में प्रसिद्धि पाई थी। चीरफाड़ के शस्त्र सामान्यता लोहे के बनाए जाते थे, किन्तु राजा व सम्पन्न लोगों के लिए स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि के भी प्रयुक्त होते थे। प्राचीन आर्यों को पशु चिकित्सा का भी ज्ञान था। अनेक पशु चिकित्सा के ग्रन्थ भी मिले हैं, जैसे (1) पास्त्रकप्प का हस्तयायुर्वेद, (2) नकुल का अश्व चिकित्सा, (3) शालिहोत्र का अश्वशास्त्र, (4) दीपंकर का अश्ववैद्यक आदि। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के प्राचीन काल में विज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त उन्नत था तथा मानव सभ्यता के विकास में इसका पर्याप्त योगदान रहा।

5.7 दर्शनशास्त्र

दर्शन शब्द 'दृष्टि' से निकला है जिसका अर्थ है-देखना या सोच। यद्यपि भारतीय दर्शन धार्मिक विश्वासों से काफी गहरे सम्बद्ध है, फिर भी एक हिन्दू के लिए नास्तिक होना सम्भव है। विश्व के रचयिता ईश्वर के अस्तित्व से इनकार करने के कारण कुछ पारम्परिक दर्शन नास्तिक भी थे। पुनर्जन्म को स्वीकारने के बावजूद भी एक देवता द्वारा शून्य से विश्व की रचना को न मानना भी सम्भव था।

बुद्ध तथा महावीर के उद्‌भव के पश्चात छः आस्तिक धार्मिक-दार्शनिक प्रणालियों का उद्‌भव हुआ। अनेक मुद्दों पर मतभेद के बावजूद सभी ने वेदों को मान्यता दी तथा आस्तिक, एक देवनादी, नास्तिक तथा द्वैत विचार रखे। फिर भी इन पद्धतियों में से एक भी कट्टर पंथ का रूप न ले सकी। इनके मतभेदों के बावजूद इन्हें विभिन्न कोणों से देखे गए एक सत्य का पूरक माना गया है। इन पद्धतियों के वास्तविक या अनुमानित संस्थापकों के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है तथा उनके नाम व्यक्तियों की जगह सम्भवतः पूरी पद्धतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। हर पद्धति में अपने संस्थापक के लिए एक सूत्र है।

छहों पद्धतियां सामान्यतः युग्मों में संयोजित है-सांख्य (बौद्धिक ज्ञान पर आधारित), योग (ज्ञानेद्रियों पर अंतर्भूत तत्त्वों के नियन्त्रण पर आधारित), वैशेषिक (इंद्रियानुगत ज्ञान पर आधारित प्रयोग धर्मी विचार), न्याय दद्वन्द्वावाद पर आधारित तार्किक सोच), वेदान्तर, (आध्यात्मिक अनुमानों पर आधारित) तथा मीमांसा (पवित्र ग्रन्थों पर आधारित दैवीय तथा कर्मकांडीय सोच)।

प्रत्येक धाम की दूसरी पद्धति आध्यात्मिक ग्रन्थ की अपेक्षा एक 'विधि' ज्यादा है। पारम्परिक छः पद्धतियों के बाहर शैव सिद्धान्त जैसी पद्धतियाँ भी हैं। बौद्ध, जैन तथा चार्वाक तीन मुख्य नास्तिक पद्धतियाँ है। प्रथम दो वेदों को न मानने के बावजूद भविष्य में जीवन के किसी न किसी रूप को स्वीकारती है। परन्तु भौतिकवादी चार्वाक दोनों ही से इन्कार करता है।

5.7 (i) सांख्य

सांख्य का शब्दिक अर्थ है-'गणना'। अर्द्ध-मिथकीय मुनि कपिल द्वारा प्रस्थापित यह द्वैत सत्यवादी दर्शन है। प्राचीनतम प्राप्त सांख्य ग्रन्थ ईश्वर-कृष्ण की 'सांख्यकारिका' है।

इस पद्धति में जिन दो अन्तिम शाश्वत सत्यों को पहचाना गया है वे हैं-पुरूष एवं प्रकृति। प्रकृति एकल, सर्वव्याप्त तथा जटिल पदार्थ है जो विश्व में अगणित विविध रूपों में विकसित होती है। सत, रज तथा तम दूसरे तीन महत्त्वपूर्ण घटक अथवा गुण है। प्रत्येक गुण के अपने विशिष्ट लक्षण हैं, जो कुछ हद तक दूसरे की प्रकृति के विरुद्ध होने पर भी सदा सह-अस्तित्वमान, संयुक्त एवं सहयोगबद्ध होकर विश्व की प्रत्येक वस्तु का निर्माण करते हैं।

5.7 (ii) योग

सांख्य से अनेक समानताएँ रखनेवाला ये एक आस्तिक दर्शन है। शाश्वत आत्मा से ही वैयक्तिक आत्मा का जन्म होता है। सांख्य सांख्य की इस मान्यता से भाग की सहमत है। जैसा कि श्वेताश्वेतर उपनिषद् कहता है कि सांख्य ज्ञान और योग इसका अनुप्रयोग, भोग पद्धति सांख्य का दैनिक प्रयोग करती है। पंतजलि को भोग सूत्रों का प्रेणता माना जाता है।

5.7 (iii) वैशेषिक